RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-4, सितम्बर अक्टूबर नवम्बर 2023

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 | अंक - 4 | सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

वैदिक परम्परा में उपलब्ध तंत्री वाद्य

श्वेता त्रिवेदी
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

वैदिक परम्परा में उपलब्ध तन्त्री वाद्यों का विवेचन करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वैदिक साहित्य केवल धार्मिक या आध्यात्मिक ग्रंथों का संकलन नहीं है, अपितु उसमें तत्कालीन समाज के सांस्कृतिक, कलात्मक एवं सौन्दर्यबोध का भी सम्यक् चित्रण प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति के किसी भी पक्ष का गम्भीर और प्रामाणिक अध्ययन वैदिक साहित्य के बिना अधूरा माना जाता है, क्योंकि यह साहित्य न केवल प्राचीनतम है, बल्कि परम्परा, आचार और जीवन-दृष्टि का मूल स्रोत भी है। ऋग्वेद की प्राचीनता के विषय में भारतीय एवं विदेशी विद्वानों में प्रायः सर्वसम्मति है और इसी कारण उसमें निहित संगीत एवं वाद्य-विवरण को भारतीय संगीत परम्परा की आदि अवस्था के रूप में देखा जाता है।

भारतीय परम्परा के अनुसार वेदों का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद—इन चारों के सम्मिलित रूप को ही वेद कहा गया है। केवल चार संहिताओं को वेद मानने की धारणा अपेक्षाकृत आधुनिक है और प्राचीन परम्परा के अनुरूप नहीं मानी जाती। यही व्यापक दृष्टि संगीत-शास्त्रों के अध्ययन में भी अपेक्षित है। संस्कृत संगीत-साहित्य ने भी वैदिक परम्परा का ही अनुसरण किया है, अतः नाट्यशास्त्र जैसे ग्रंथों में वर्णित सिद्धान्तों को समझने के लिए आधुनिक दृष्टिकोण की अपेक्षा प्राचीन, परम्परागत दृष्टि अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। नाट्यशास्त्र में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्रह्मा ने चारों वेदों से तत्त्व ग्रहण कर नाट्यवेद की रचना की। इससे यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि नाट्य, संगीत और वाद्य-परम्परा का वैदिक साहित्य से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।

भारतीय परम्परा में यह मान्यता सदा से रही है कि भारतीय संगीत की उत्पत्ति सामगान से हुई है। यद्यपि आधुनिक विचारक इस मत को ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर चुनौती दे सकते हैं, तथापि प्राचीन शास्त्रकारों की दृष्टि से इस मान्यता को सर्वथा अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सामवेद में स्वर, लय और गान की जो सूक्ष्म व्यवस्था मिलती है, वह आगे चलकर शास्त्रीय संगीत की आधारशिला बनती हुई प्रतीत होती है।

वैदिक साहित्य में संगीत कला का वर्णन केवल गान तक सीमित नहीं है, अपितु उसके साथ प्रयुक्त वाद्यों का भी उल्लेख मिलता है। उस काल में वीणा का आविर्भाव हो चुका था और उसका महत्व अन्य वाद्यों की अपेक्षा अधिक माना जाता था। ऋग्वेद में बाण, गर्गर, गोधा, कर्करी, क्षोण, आघाटी आदि वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। विद्वानों का मत है कि ये सभी तन्त्री वाद्य थे, अर्थात् जिनमें ध्वनि उत्पन्न करने के लिए तन्त्रियों का प्रयोग किया जाता था। यजुर्वेद में 'वीणा' शब्द का प्रयोग सामान्य संज्ञा के रूप

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

में हुआ है, जिससे यह संकेत मिलता है कि तन्त्री वाद्यों के लिए 'वीणा' एक व्यापक नाम था और विभिन्न प्रकार की वीणाएँ उसी के अन्तर्गत आती थीं।

ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद और अथर्ववेद में तन्त्री वाद्यों का उल्लेख और अधिक विस्तार से मिलता है। अथर्ववेद में घाटलिका या अपघाटलिका, काण्ड-वीणा, पिच्छोला या पिछोरा, स्तम्बल वीणा, तालुक वीणा, अलाबु वीणा तथा कपिशीर्ष्णी वीणा जैसे नाम प्राप्त होते हैं। इन नामों से यह अनुमान लगाया जाता है कि वीणा के अनेक प्रकार उस समय प्रचलित थे, जिनके आकार, निर्माण-सामग्री और ध्वनि-स्वरूप में भिन्नता रही होगी। यद्यपि अधिकांश वीणाओं के रूप और रचना का स्पष्ट विवरण उपलब्ध नहीं है, फिर भी उनके नाम यह सिद्ध करते हैं कि वैदिक काल में तन्त्री वाद्यों की परम्परा अत्यन्त समृद्ध थी।

संगीत की दृष्टि से सामवेद का विशेष महत्व है, क्योंकि उसमें गान की प्रधानता है। सामवेद के जैमिनीय ब्राह्मण में पूर्वोक्त वाद्यों के अतिरिक्त ऐषीकी और काश्यपी वीणा का भी उल्लेख मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में न केवल वीणा का प्रयोग व्यापक था, बल्कि उसके विभिन्न रूपों का भी विकास हो चुका था। यह स्थिति तन्त्री वाद्यों की लोकप्रियता और संगीत में उनकी अनिवार्यता को दर्शाती है।

बाण तंत्री वाद्य :

वैदिक साहित्य में तन्त्री वाद्यों में 'बाण' का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। इस वाद्य की आकृति और स्वरूप के विषय में भी कुछ संकेत प्राप्त होते हैं, जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि बाण एक प्रमुख तन्त्री वाद्य था। अन्य वीणाओं के नाम तो मिलते हैं, परन्तु उनके रूपों का स्पष्ट वर्णन न मिलने के कारण उनका पूर्ण चित्र हमारे सामने नहीं आ पाता। फिर भी उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैदिक काल में तन्त्री वाद्य केवल सहायक साधन नहीं थे, बल्कि संगीत, गान और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग थे। इस प्रकार वैदिक परम्परा में तन्त्री वाद्यों का विकास भारतीय संगीत परम्परा की सुदृढ़ और प्राचीन जड़ों को प्रकट करता है।

वैदिक साहित्य में उल्लिखित 'बाण' अथवा 'वाण' वाद्य का विवेचन भारतीय संगीत के प्राचीन स्वरूप को समझने की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैदिक ग्रंथों में इस वाद्य का उल्लेख पर्याप्त मात्रा में मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह केवल एक नाममात्र का वाद्य नहीं था, बल्कि तत्कालीन सांगीतिक जीवन में इसका विशिष्ट स्थान था। ऋग्वेद में जहाँ 'वाण' शब्द का प्रयोग मिलता है, वहीं अथर्ववेद में यही शब्द 'बाण' रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस आधार पर विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि 'वाण' और 'बाण' दोनों समानार्थी हैं। व्युत्पत्तिशास्त्रीय दृष्टि से यह शब्द गत्यर्थक 'वण' धातु से 'घञ' प्रत्यय के योग से निष्पन्न माना गया है, जो गति, प्रवाह और नाद से इसके सम्बन्ध को सूचित करता है।

यद्यपि कुछ विद्वानों ने बाण को तन्त्री वाद्य न मानकर सुषिर वाद्य सिद्ध करने का प्रयास किया है, तथापि वैदिक सन्दर्भों और भाष्य-परम्परा का सूक्ष्म अध्ययन इस मत की पुष्टि नहीं करता। डॉ. कुटंसेक का यह मत रहा है कि 'बाण' सम्भवतः वंश वाद्य होना चाहिए, क्योंकि ऋग्वेद में इसका सम्बन्ध मरुत् देवताओं से जोड़ा गया है और मरुतों के हाथ में वंश अथवा वंशी जैसे सुषिर वाद्य की कल्पना की जा सकती है। उनके अनुसार यह एक साधारण खड़ी वंशी या 'कने' प्रकार का वाद्य रहा होगा। किन्तु यह मत मुख्यतः

प्रतीकात्मक कल्पना पर आधारित है, न कि वैदिक मन्त्रों के प्रत्यक्ष अर्थ और परम्परागत भाष्यों पर।

ऋग्वेद में 'वाण' शब्द का प्रयोग विशेषत: मरुत् सूक्तों में 1/85/10 तथा 8/20/8 में हुआ है। इसके अतिरिक्त सोम सूक्त 2/50/1 और 9/97/8 में तथा इन्द्र सूक्त 10/32/4 में भी इसका उल्लेख मिलता है। इन सभी स्थलों पर 'वाण' शब्द का प्रयोग जिस प्रकार हुआ है, उससे यह कहीं भी स्पष्ट रूप से सुषिर वाद्य, अर्थात् वंशी या बाँसुरी का बोध नहीं कराता। इसके विपरीत, इन सन्दर्भों में नाद, गाम्भीर्य और तारों से उत्पन्न ध्वनि का संकेत अधिक मिलता है।

आचार्य सायण का भाष्य इस विषय में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद के सूक्त 8/20/8 पर 'वाण' शब्द की व्याख्या करते हुए सायण ने इसे 'मरुद्वीणा' कहा है। यह स्पष्टीकरण अपने आप में निर्णायक है, क्योंकि 'वीणा' शब्द प्राचीन भारतीय परम्परा में तन्त्री वाद्य के लिए ही प्रयुक्त होता रहा है। इसी प्रकार ऋग्वेद 1/85/10 की टीका में सायण ने मरुतों की 'वाण' को सौ तन्त्रियों से युक्त स्वीकार किया है और उसे एक विशेष प्रकार की वीणा के रूप में वर्णित किया है। यदि किसी वाद्य में सौ तन्त्रियों की कल्पना की जा रही है, तो उसे सुषिर वाद्य मानना सर्वथा असंगत प्रतीत होता है।

पाश्चात्य विद्वानों में मैक्समूलर ने भी इस शब्द पर विचार किया है। उन्होंने ऋग्वेद 1/85/10 और 9/97/8 में प्रयुक्त 'बाण' शब्द का अर्थ कहीं-कहीं 'वाणी' किया है, जबकि 8/20/8 और 2/50/1 में इसका अनुवाद वाद्य के रूप में 'बाण' ही किया है। बाटलिंग कोश में भी ऋग्वेद 2/50/1 में इस शब्द का अर्थ वाद्य के रूप में स्वीकार किया गया है। सेन्ट पीटर्सबर्ग शब्दकोश के अनुसार भी ऋग्वेद और अथर्ववेद में प्रयुक्त 'वाण' अथवा 'बाण' शब्द संगीत-वाद्य का द्योतक है।

यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि 'बाण' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में धनुष के बाण के अर्थ में भी हुआ है, जैसे ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के कुछ सूक्तों में। परन्तु जहाँ यह शब्द वादन, नाद और स्तुति के सन्दर्भ में आता है, वहाँ उसका अर्थ शस्त्र से भिन्न होकर वाद्य ही माना जाना चाहिए। ऋग्वेद 1/85/10 में मरुत् देवताओं को 'वाण' वाद्य बजाकर पराक्रम प्रकट करते हुए दिखाया गया है। यहाँ 'वादन' की क्रिया स्वयं यह संकेत देती है कि यह एक ऐसा वाद्य है जिसे बजाया जाता है, न कि फूँका जाता है।

सोम देवता की स्तुति के प्रसंग में भी 'वाण' वाद्य का उल्लेख अत्यन्त अर्थपूर्ण है। पवमान सोम की आराधना के समय सभी ऋषियों के एक साथ इस वाद्य को बजाने का उल्लेख मिलता है। एक ऋक में सोमरस को संबोधित करते हुए कहा गया है कि हे सोम! तुम हाथ में रखे पात्र में पर्जन्य की धार के समान वेग से गिरते हुए 'वाण' वाद्य के स्वर के समान अथवा धनुष से छूटे बाण के समान गंभीर ध्वनि उत्पन्न करो। यहाँ 'वाण' और 'बाण' दोनों उपमानों का प्रयोग हुआ है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि शब्द की ध्वन्यात्मक गम्भीरता ही प्रधान है।

विश्वदेवों की स्तुति के समय 'वाण' वाद्य के द्वारा निषाद आदि सप्त स्वरों के वादन का उल्लेख भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मूल मन्त्र में प्रयुक्त 'सप्त धातु' शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य सायण ने इसे निषाद आदि सप्त स्वरों का द्योतक माना है। सप्त स्वरों का वादन तन्त्री वाद्य पर ही सम्भव है, क्योंकि प्राचीन काल में स्वर-व्यवस्था का सूक्ष्म प्रयोग मुख्यत: वीणा आदि तन्त्री वाद्यों पर ही किया जाता था।

व्याकरणिक दृष्टि से 'वाण' शब्द नपुंसकलिंग है, किन्तु इसकी विशालता और महत्त्व के कारण

इसे 'महती' अथवा 'महावीणा' के रूप में समझा गया है। 'महाव्रत' नामक परम श्रेष्ठ सोमयज्ञ में श्रेष्ठ सामगायक इस 'वाण' तन्त्री वाद्य को बजाया करते थे। परम्परा में यह भी कहा गया है कि इस वाद्य को सौ तारों से युक्त किया जाता था और जो इसे बजाता था, उसे सौ वर्ष की पूर्ण आयु प्राप्त होती थी। यहाँ सौ तारों की कल्पना मनुष्य की सौ वर्ष की आयु के प्रतीक के रूप में की गई है।

पंचविंश ब्राह्मण में भी यह मत मिलता है कि इस वाद्य को सत्रकर्ता यजमान के द्वारा बजाने से सभी को दीर्घायु, अर्थात् सौ वर्ष की आयु प्राप्त होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि 'वाण' वाद्य केवल संगीत का साधन नहीं था, बल्कि यज्ञ, दीर्घायु और मंगल की कामना से भी गहराई से जुड़ा हुआ था।

बाण की रचना :

वैदिक परम्परा में 'वाण' तन्त्री वाद्य की रचना केवल एक वाद्य-निर्माण की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि वह यज्ञ, मन्त्र, देवता और स्वर-तत्त्व से गहरे रूप में जुड़ी हुई एक पवित्र विधि के रूप में सामने आती है। 'लाट्यायन श्रौतसूत्र' में वाण की रचना का जो विवरण प्राप्त होता है, उससे यह स्पष्ट होता है कि इस वाद्य का निर्माण अत्यन्त नियोजित, प्रतीकात्मक और धार्मिक विधान से सम्पन्न होता था।

सूत्र के अनुसार सर्वप्रथम 'आसन्दी', अर्थात् चार पाँव वाला एक विशेष आसन या ढाँचा तैयार किया जाता था। यह आसन्दी औदुम्बर वृक्ष की लकड़ी से बनाई जाती थी। औदुम्बर को वैदिक परम्परा में पवित्र, उर्वरता और प्राण-शक्ति से युक्त माना गया है, अतः उसका चयन केवल भौतिक नहीं, अपितु आध्यात्मिक कारणों से भी किया गया था। इस ढाँचे को लाल रंग के बैल के रोमयुक्त चर्म से मढ़ा जाता था। लाल बैल का चर्म शक्ति, तेज और यज्ञीय ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है, जिससे यह संकेत मिलता है कि वाण केवल ध्वनि-उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि यज्ञीय शक्ति का वाहक भी था।

इसके पश्चात् इस वाद्य के एकदम निचले भाग में छोटे-छोटे दस छिद्र किए जाते थे। प्रत्येक छिद्र में दस-दस तार लगाए जाते थे। इस प्रकार कुल सौ तारों से युक्त वाण का निर्माण होता था। ये तार दूब या मूँज से बनाए जाते थे, जो स्वयं में पवित्र और यज्ञोपयोगी मानी जाती हैं। शाण्डिल्य मुनि के मत में इस व्यवस्था में कुछ भिन्नता मिलती है। उनके अनुसार दस के स्थान पर केवल तीन छिद्र किए जाने चाहिए। मध्य छिद्र में चौंतीस तार तथा दोनों ओर के छिद्रों में तैंतीस-तैंतीस तार लगाए जाने चाहिए। इस प्रकार यहाँ भी कुल सौ तारों की ही व्यवस्था रहती है, किन्तु उनका वितरण त्रैविध्य के सिद्धान्त पर आधारित है।

तारों को कसने की प्रक्रिया भी मन्त्रात्मक है। 'भूः, भुवः, स्वः' इन तीन व्याहृति मन्त्रों के द्वारा वाण वाद्य के ऊपर, अर्थात् घोड़ी पर लगे तारों में से एक-एक तार को अलग किया जाता था और विधिपूर्वक कसा जाता था। यदि कोई तार ढीला हो जाए, तो पुनः सूत्रोक्त मन्त्रों के साथ उसे ठीक किया जाता था। इस प्रकार मन्त्र और क्रिया के समन्वय से वाण वाद्य को पूर्ण रूप दिया जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि वाद्य की ध्वनि को केवल भौतिक कसाव का परिणाम नहीं माना गया, बल्कि उसे ब्रह्माण्डीय स्तरों—भू, भुवः और स्वः—से जोड़ा गया।

इसके बाद 'वाक् सर्वा नो भद्रा' मन्त्र का जप करते हुए वाण को बजाने की विधि बताई गई है। वाद्य को बजाने के लिए 'वेतस' वृक्ष की स्वाभाविक रूप से वक्राकार लकड़ी के मूल भाग का प्रयोग किया जाता था। यह लकड़ी स्वाभाविक रूप से चन्द्राकार या बाँकी होने के कारण तन्त्री वाद्य के अनुकूल

मानी जाती थी। 'प्राणाय त्वा' मन्त्र के साथ सप्त स्वर-चिन्हों के स्थानों से आरोही क्रम में स्वर बजाकर जाँच की जाती थी। तत्पश्चात् 'अपानाय त्वा' मन्त्र से नीचे से ऊपर दण्ड तक एक-एक अवरोही स्वर बजाए जाते थे। 'व्यानाय त्वा' मन्त्र के साथ शाखा से सीधे तीन बार वादन किया जाता था। इसके पश्चात् वाण वाद्य को उत्तर दिशा की ओर भूमि पर सरका कर रखा जाता था और वहाँ बैठे ब्राह्मण से यह कहा जाता था कि वह यहीं बैठकर वाद्य बजाए। यह समूची प्रक्रिया वाण को प्राण, अपान और व्यान जैसे प्राणवायु-तत्त्वों से जोड़ती है।

'आपस्तम्ब श्रौतसूत्र' में भी वाण वाद्य की रचना और उसके स्वरूप का वर्णन मिलता है, जो मूलत: लाट्यायन परम्परा से साम्य रखता है। यहाँ भी औदुम्बर की लकड़ी से बने वीणा-दण्ड के निचले भाग में दस छिद्र करने और प्रत्येक छिद्र में मूँज के दस तार डालने की बात कही गई है, जिससे सौ तारों वाला वाण तैयार होता है। किन्तु कुछ परम्पराओं में मन्त्र 'भुवस्त्रयस्त्रिशतन्तव:' का उच्चारण करते हुए तारों के वितरण को यज्ञीय अधिकारियों से जोड़ा गया है। इस मत के अनुसार होता को तैंतीस तार, उद्गाता को तैंतीस तार और शेष एक सौवाँ तार 'गृहपति' नामक यजमान द्वारा लगाया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि वाण केवल संगीत-वाद्य नहीं, बल्कि यज्ञ की सामाजिक और कर्मकाण्डीय संरचना का भी प्रतीक था।

इसी सूत्र में यह भी कहा गया है कि 'वाग्भद्रम्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए तीन पर्वों से युक्त, स्वभावत: वक्राकार, प्राकृतिक चन्द्राकार लकड़ी से बने वाण को उद्गाता को कुछ समय स्वयं बजाना चाहिए और फिर उसे प्रस्तोता को सौंप देना चाहिए। प्रस्तोता उसे अध्वर्यु को देता है और अध्वर्यु आगे किसी अन्य वीणा-वादक को देता है। अंतत: वाण को सभा-मण्डप के अग्रभाग में द्वार के दक्षिण दिशा में स्थित खम्भे के पास बजाते हुए रखा जाता है। यह क्रम वाण वाद्य के यज्ञीय संचरण और सामूहिक पवित्रता को प्रकट करता है।

'ऐतरेय आरण्यक' में वाण वाद्य के प्रयोग की विधि और भी अधिक स्पष्ट रूप में सामने आती है। इसमें बताया गया है कि होता के उच्च आसन्दी पर बैठने के बाद सौ तारों से युक्त औदुम्बर दण्ड वाला वाण उसके हाथ में दिया जाए। वह उसे लेकर 'सद्' नामक मण्डप, अर्थात् यज्ञ-सभा गृह में प्रवेश करे और अन्य वीणाओं की भाँति उसे दाहिने कन्धे पर रखकर बैठे। वाण के दण्ड पर नीचे से ऊपर तक ऐसे स्थानों पर चिन्ह किए जाएँ, जहाँ से सप्त स्वर स्पष्ट रूप से निकल सकें। मन्त्रों को क्रम से स्मरण करते हुए औदुम्बर की गीली लकड़ी के मूल भाग से नीचे से ऊपर तक सप्त स्वरों को क्रमश: बजाकर जाँचा जाता है। इसके पश्चात् उस वाण वाद्य को दण्ड सहित उद्गाता को सौंप दिया जाता है।

बाण में तार :

वैदिक साहित्य में वाण वाद्य के तार उसकी सबसे प्रमुख विशेषता के रूप में वर्णित हैं। 'आपस्तम्ब श्रौतसूत्र', 'लाट्यायन श्रौतसूत्र', 'तैत्तिरीय संहिता', 'ताड्य ब्राह्मण' तथा 'बौधायन श्रौतसूत्र'—इन सभी ग्रन्थों में वाण को सौ तारों से युक्त तन्त्री वाद्य बताया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सौ तन्त्रियों की व्यवस्था वाण की एक स्थिर और सर्वमान्य परम्परा थी।

'कात्यायन श्रौतसूत्र' के अनुसार वाण की तन्त्रियाँ मूँज तथा 'दा' नामक घास से बनाई जाती

थीं, जो यज्ञोपयोगी और पवित्र मानी जाती हैं। वाण का वादन वेतस वृक्ष की स्वाभाविक रूप से वक्राकार लकड़ी अथवा 'इषिका' नामक उपकरण से किया जाता था। 'जैमिनीय ब्राह्मण' में उद्गाता और प्रस्तोता द्वारा मन्त्रों के साथ तारों को कसकर औदुम्बर की लकड़ी के बने आसन पर बैठकर वादन करने का उल्लेख मिलता है।

आचार्य सायण ने भी अपने भाष्य में वाण को सौ तारों से युक्त 'महावीणा' के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि वाण वाद्य की पहचान उसके सौ तारों, प्राकृतिक तन्त्रियों और विधिपूर्वक मन्त्रयुक्त वादन से जुड़ी हुई थी, जो उसे वैदिक काल का एक विशिष्ट और प्रतिष्ठित तन्त्री वाद्य सिद्ध करती है।

कलाकारों के बैठने का स्थान :

वैदिक काल में कलाकारों और वादकों के बैठने के स्थान का निर्धारण निश्चित और विधिपूर्वक होता था। 'तैत्तिरीय संहिता' में उद्गाता को 'आसन्दी' पर बैठने का निर्देश है, वहीं 'ऐतरेय आरण्यक' में होता को उच्च आसन्दी पर बैठना बताया गया है। 'बोधायन सूत्र' के अनुसार सामगायन के लिए उद्गाता को चारपाई के ऊंचे आसन पर बैठना चाहिए। उसके बाद अध्वर्यु को दर्भासन पर बैठकर 'माहेन्द्र' श्रोत का साम का उपाकारण करना होता है, जिससे सामगायन प्रारंभ होने की सूचना मिलती थी। 'आपस्तम्ब श्रौतसूत्र' में भी यह विवरण मिलता है कि उद्गाता के लिए औदुम्बर की लकड़ी का चारपाँव वाला ऊँचा आसन रखा जाता था और उसके साथी, जो साम गायन में सहायक थे, सत्रकर्ता यजमान को दर्भासन पर बैठते थे। 'सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र' में भी इसी परम्परा का उल्लेख है।

सामगान में स्वर-प्रयोग की परम्परा भी विशेष थी। ऋग्वेद में बाण वाद्य से सप्त धातु निकलने का उल्लेख मिलता है, परंतु साम के प्रतिशाख्य ग्रन्थों में केवल तीन स्वर—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित—का प्रयोग दर्शाया गया है। 'नारदीय शिक्षा' जैसे ग्रन्थों में सामगान में सप्त स्वरों के उपयोग का भी उल्लेख है और यह स्पष्ट किया गया है कि उद्गाता आदि तीन स्वरों से सप्त स्वरों का सम्बन्ध रखते थे। इसका तात्पर्य यह है कि विभिन्न शाखाओं में तीन, पाँच या सात स्वर प्रयोग में आते थे। अधिकांश शाखाएँ आज लुप्त हो चुकी हैं, इसलिए केवल तीन या सात स्वर ही मान लेना सही नहीं होगा। आचार्य सायण ने भी स्पष्ट किया है कि सप्त धातु का तात्पर्य निषादादि सप्त स्वरों से है।

गर्गर वाद्य :

गर्गर वाद्य का उल्लेख ऋग्वेद में 'गोधा वीणा' के साथ मिलता है। आचार्य सायण के अनुसार इसका स्वर गर्गर के समान होता है और इसकी ध्वनि डरावनी प्रकार की होती है। डॉ. कुर्ट सेक के मतानुसार यह तन्त्री वाद्य के रूप में वर्णित है और आड़ा पकड़कर बजाया जाने वाला वक्राकार तन्त्री वाद्य हो सकता है। सामवेद में उल्लिखित 'कर्करी' शब्द को गर्गर का विकसित रूप माना गया है। यजुर्वेद के समय तक इस वाद्य का स्थान वाण ने ग्रहण कर लिया था।

मानक हिन्दी कोश में गर्गर को प्राचीन वाद्य माना गया है और यह शब्द मछली, गगरा या गागर के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। पाश्चात्य विद्वानों जैसे मैकडोनल और कीथ ने भी इसे वाद्य यंत्र के रूप में स्वीकार किया है।

कर्करी वीणा :

कर्करी का अर्थ 'झारी' या 'ककड़ी' होता है, जो जमीन पर फैलने वाली बेल होती है और जिसमें पतले लंबे फल लगते हैं। डॉ. धर्मावती श्रीवास्तव के अनुसार कर्करी एक ऐसा फल है जो पानी में पाया जाता है और उसमें छिद्र होता है। संभवतः इसी फल से बनी वीणा को कर्करी कहा गया। ऋग्वेद में कर्करी वाद्य को उपमान के रूप में प्रयोग किया गया है, जैसे 'कर्करी की तरह आपकी वीणा है।' आचार्य सायण ने इसे विशेष वाद्य के रूप में निरूपित किया है। अथर्ववेद में भी कर्करी वाद्य की विशेष ध्वनि का उल्लेख मिलता है।

कुर्ट सेक के अनुसार सामवेद में उल्लिखित कर्करी, गर्गर का विकसित रूप हो सकता है। पाश्चात्य विद्वान मैकडोनेल और कीथ ने इसे संभवतः वीणा के रूप में स्वीकार किया है। मैत्रायणी संहिता (4/2/9) में पशुओं के कान पर वीणां जैसा चिन्ह (कर्करी - कर्ण्यः) लगाने का उल्लेख है।

गोधा वीणा :

ऋग्वेद में गोधा शब्द का प्रयोग वाद्य यंत्र के रूप में हुआ है। अन्य सन्दर्भों में यह शब्द संभवतः एक जानवर, जैसे मगर या छिपकली, से सम्बन्धित है। मैकडोनेल और कीथ ने इसे छिपकली के समान माना है। ऋग्वेद के कुछ स्थलों पर इसका अर्थ धनुष की प्रत्यंचा भी निकला है। अथर्ववेद में भी यही अर्थ स्वीकार किया गया है। आज भी गोधा का एक अर्थ जंगली छिपकली या जानवर होता है।

आचार्य कर्क के अनुसार इसे गोधा वीणा इसलिए कहा जाता है क्योंकि वाद्य का ढाँचा गोधा के चर्म से ढका हुआ होता था। शुक्ल कात्यायन सूत्र में उल्लेख है कि गोधा नामक जानवर की खाल से बनी वीणा को सामगान में पत्नियों द्वारा बजाया जाता था।

वैदिक साहित्य में विभिन्न वीणाओं और तन्त्री वाद्यों का विस्तृत उल्लेख मिलता है, जो संगीत और यज्ञ-संस्कृति में महत्वपूर्ण थे।

आघाटी :

ऋग्वेद में इसका उल्लेख मिलता है। आचार्य सायण के अनुसार आघाटी, घाटलिका और काण्ड वीणा के वादन से गायक निषादादि सप्त स्वर गाता था। अथर्ववेद में गंधर्वों के संबंध में भी आघाट का वर्णन है। बोधायन श्रौत सूत्र के अनुसार आघाटी, पिच्छोला और कर्करी वीणा बजाते हुए यजमान की पत्नियाँ सामगान में उद्गाता के पास बैठकर संगति करती थीं। मैकडोनल एवं कीथ के अनुसार यह नृत्य-संगत में मंजीरा के समान वाद्य था।

काण्ड वीणा :

नड़ों के जोड़ों से बनी एक विशिष्ट वीणा। सायण ने आघाटी का पर्याय बताई है। महाव्रत सोमयज्ञ में यजमान की पत्नियाँ काण्ड वीणा बजाकर सामगायक की उपगान-संगति करती थीं।

घाटलिका (अपघाटलिका) :

आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी श्रौत सूत्रों में उल्लेख है कि यह वीणा सामगायक के पास बैठकर

पत्नियों द्वारा संगति हेतु बजाई जाती थी। लाट्यायन श्रौत सूत्र में काण्डमयी व पिच्छोला वीणाओं को अपघाटलिका कहा गया।

महावीणा :

बाण तन्त्री वाद्य का प्रमुख नाम, जिसे गुत्तिलजातक एवं वीणा प्रपाठक में भी उल्लेख किया गया।

कात्यायन वीणा :

वैदिक काल में बाण शततन्त्री वीणा के समय से प्रचलित। कात्यायन ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुई। मिश्र और अन्य देशों में इसे कात्यायन/कातुन के रूप में अपनाया गया।

अलाबु वीणा :

वैदिक और मध्यकालीन ग्रंथों में उल्लिखित। अथर्ववेद में लौकी से बने पात्रों के रूप में वर्णित। पाणिनि के समय ध्वनि को अनुस्वारों से तुलित किया गया।

कश्यप वीणा :

अथर्ववेद और अन्य ब्राह्मण ग्रंथों में उल्लेख। इसका आकार कछुए, मछली या हिरण जैसा हो सकता है।

पिशील :

शतपथ ब्राह्मण और लाट्यायन श्रौत सूत्र में वर्णित। संभवत: तश्तरी के आकार की वीणा।

क्षोणी :

ऋग्वेद में तन्त्री वाद्य के रूप में उल्लिखित।

अन्य वीणाओं जैसे वक्र, तंबल, जाति, सब्ब, पिच्छोला, कर्कटीका, तालुक, इषिका आदि का भी उल्लेख मिलता है।

वैदिक और पश्चात वैदिक साहित्य में वीणा और तन्त्री वाद्यों का उल्लेख अत्यधिक प्रचलित था। विद्वानों की मान्यता है कि जीवन के प्रत्येक पक्ष का दर्शन 'रामायण' में मिलता है। संगीत से संबंधित शब्द जैसे सप्तस्वर, त्रिस्थान, मूर्च्छना, सप्तजाति आदि रामायण में देखे जाते हैं। गान्धर्वों के साथ अप्सराओं का भी उल्लेख है। लव-कुश द्वारा 'रामायण' गान में वीणा को तन्त्री वाद्य के रूप में बताया गया है, जबकि सामूहिक वादन के लिए 'वादित्र' शब्द का प्रयोग हुआ। अयोध्याकाण्ड में वीणा का उल्लेख है। रावण के अन्त:पुर में महर्षि बाल्मीकि ने वीणा के साथ विपंची और आडम्बर का उल्लेख किया है। वीणा निश्चित रूप से तन्त्री वाद्य थी और विपंची भी नाट्यशास्त्र के अनुसार वीणा का प्रकार था। आडम्बर संभवत: औदुम्बरी वीणा का द्योतक है। अशोक वाटिका में सीता की विपन्न अवस्था का चित्रण करते समय बाल्मीकि ने उन्हें मूक पड़ी 'वल्लकी' वीणा के समान दिखाया है। सामूहिक वादन के लिए रामायण में 'तूर्य' शब्द का प्रयोग हुआ।

महाभारत में भी वीणा वादन का उल्लेख मिलता है। यज्ञ स्थल पर नृत्य की संगति वीणा वादन

से होती थी। विश्वासु गंधर्व द्वारा वीणा वादन का विवरण उपलब्ध है। द्रौपदी के स्वयंवर में वेणु और मृदंग के साथ वीणा वादन हुआ। महाभारत में गंधर्व और किन्नरों का उल्लेख समय-समय पर है। आलाप, तान, मूर्च्छना शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। विपंची और वल्लकी दोनों तन्त्री वाद्य के रूप में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होते थे। वीणा में सप्त-तन्त्री होने का प्रमाण भी महाभारत में मिलता है।

जातक साहित्य, बौद्ध साहित्य और जैन ग्रंथों में भी वीणा वाद्यों का उल्लेख है। जातक साहित्य में मुख्य रूप से सप्त तन्त्री का वर्णन है। बौद्ध साहित्य में विपंची, वल्लकी, महती, कच्छपी, नकुली और तुम्ब वीणा का उल्लेख है। जैन ग्रंथों में चित्त या चित्र, सुघोषा, नन्दिघोषा, परवायुवी आदि वीणाओं का वर्णन मिलता है। हरिवंश पुराण, वायु पुराण और मार्कण्डेय पुराण में भी संगीत का विवरण है, जिसमें हरिवंश पुराण में वल्लकी वीणा का उल्लेख विशेष है।

वल्लकी वीणा :

वल्लकी शब्द 'व्रल वल्ल संवरणे' में 'क्वु न्' और 'डीष्' प्रत्यय से बना है। यहाँ 'वल्ल' का अर्थ नियंत्रण या संयम से है, अत: वल्लकी वीणा वह वीणा है जो स्वरों को नियंत्रित करने की क्षमता रखती है। अमरकोश के अनुसार, वीणा, वल्लकी और विपंची, ये वीणा के तीन नाम हैं।

रामायण और महाभारत में वल्लकी वीणा का उल्लेख मिलता है। महाभारत में वीणा और वल्लकी दोनों स्वतंत्र रूप से वर्णित हैं। बालकाण्ड एवं सुन्दरकाण्ड में इसका उल्लेख गान और यज्ञ-संगीत के प्रसंग में आता है। बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी वल्लकी का वर्णन तन्त्री वाद्य के रूप में मिलता है। नाट्यशास्त्र में इसका उल्लेख नहीं, किन्तु आचार्य अभिनवगुप्त ने इसे 'वक्रा वीणा' के अंतर्गत शामिल किया है। नान्यदेव ने भरतभाष्य में इसे छ: गुणों वाली वीणा बताया। शारंगदेव मौन हैं, किंतु सुधाकलश ने वल्लकी का उल्लेख किया है।

मध्यकालीन ग्रंथों जैसे 'संगीत नारायण' और 'संगीत दामोदर' में भी वल्लकी का नाम तन्त्री वाद्य के रूप में मिलता है। पं. विद्या विलासी ने वल्लकी वीणा का उल्लेख दो स्थानों पर किया है, जिसमें रामभक्त हनुमान के वादन का वर्णन शामिल है, किंतु उन्होंने इसका ग्रंथीय आधार स्पष्ट नहीं किया। कालिदास के 'रघुवंश' में भी वल्लकी का उल्लेख मिलता है।

वल्लकी वीणा मुख्य रूप से तन्त्री वाद्य थी। इसका प्रयोग वैदिक, महाकाव्यिक और मध्यकालीन संगीत परंपरा में हुआ। यह वीणा विशेष रूप से स्वरों के नियंत्रित और सटीक वादन के लिए प्रयुक्त होती थी। इसके माध्यम से यज्ञ, सामगान, नृत्य संगति और महाकाव्यिक गीतों में संगीत की समृद्धि और संयम सुनिश्चित होता था।

सप्ततंत्री :

सप्ततन्त्री वीणा का वर्णन मुख्यत: जातक साहित्य में मिलता है, विशेषकर गुत्तिल जातक में। डा. धर्मावती श्रीवास्तव के अनुसार, इस वीणा का दण्ड पीछे की ओर चौड़ा और गोल, सामने की ओर पतला होता था। यह वीणा सात तारों से युक्त थी, जिसमें प्रथम तार को भ्रमर तन्त्री कहा जाता था। तारों को वीणा के दण्ड में बाँधा जाता था। पालिजातक में सप्ततन्त्री (सन्ततन्त्री) वीणा का उल्लेख है, और वीणाथुण

जातक में एक कुबड़े की तुलना टूटे तार वाले वीणा दण्ड से की गई है। रामायण और महाभारत में भी तन्त्री वीणाओं का उल्लेख मिलता है।

गुत्तिल जातक के अनुसार, वीणा वादक तारों को क्रमश: तोड़ते हुए भी स्वर उत्पन्न कर सकते थे। यह विधि तारों को दबाकर स्वर निकालने की उन्नत तकनीक को दर्शाती है। वीणा का वादन दायें हाथ के नखों से किया जाता था। मूसिल नामक वीणा वादक प्रतियोगिता में तारों को ऊँचे और नीचले स्वर के अनुसार कसता या ढीला करता था। जातक काल में वीणा वादकों के बीच प्रतियोगिताएँ होती थीं, जिनमें विजेताओं को पुरस्कार और राज्याश्रय मिलता था। डा. एस. परांजपे के अनुसार, गुतिल और मूसिल के बीच एक प्रतियोगिता में गुतिल ने सप्ततन्त्री वीणा की तारों को तोड़ते हुए भी वादन जारी रखा, जिससे यह सिद्ध होता है कि उस काल में तन्त्री वाद्य में एकाधिक स्वर उत्पन्न करने की प्रणाली प्रचलित थी।

सप्ततन्त्री वीणा वैदिक और जातक काल की एक उन्नत तन्त्री वीणा थी। इसमें तारों की विशेष संरचना और वादन तकनीक से सात स्वरों का सटीक और स्थायी संगीत उत्पन्न होता था। प्रतियोगिता और वादन विधि यह दर्शाती है कि उस समय वीणा वादन एक कुशल और परिष्कृत कला थी।

परिवादिनी वीणा :

परिवादिनी वीणा सप्ततन्त्री के समान सात तारों वाली वीणा थी, लेकिन इसका नाम अलग था। इसका सर्वप्रथम उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है और जैन ग्रंथों में इसे परवायणी या परिवादिनी कहा गया है। अमरकोश में भी सात तार वाली वीणा को परिवादिनी लिखा गया है। कालिदास की रचनाओं में इसका उल्लेख देखा जा सकता है।

नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में परिवादिनी वीणा का कोई विस्तृत वर्णन नहीं मिलता। कुछ मध्यकालीन ग्रंथकारों ने इसके सात तारों का उल्लेख किया है। पं. परमेश्वर ने सात तारों वाली परिवादिनी का वर्णन किया, और पं. उमापति ने इसे 18 अंगुल लंबी बताया। गजपति नारायणदेव ने विपंची में सात तारों के प्रयोग को परिवादिनी कहा, जिसमें दो अतिरिक्त सारिकाएं होती थीं और कुल सात लोहे की तन्त्रियां होती थीं। इस वीणा में पर्दों के होने का उल्लेख नहीं मिलता। कुछ विद्वान इसे आधुनिक सितार से जोड़ते हैं, लेकिन यह सही नहीं है। डा. एस. परांजपे के अनुसार, पाणिनी के समय परिवादक वीणा वादक एक स्वतंत्र वर्ग थे, जो प्रमुख वीणा वादकों की संगति करते थे।

निष्कर्षत: प्राचीन भारत में वीणा वाद्य अत्यंत विकसित और विविध था। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में 'बाण वाद्य' का उल्लेख मिलता है, जिसे 100 तारों वाली महावीणा कहा गया। वीणा औदुम्बर की लकड़ी और बैल के रोम से बनती थी और मंत्रों के साथ नियत आसन पर बजाई जाती थी। अन्य वीणाओं में गर्गर, कर्करी, गोधा, आघाटी, काण्ड, अलाबु, कश्यप, पिशील, क्षोणी, वल्लकी, कात्यायन, सप्ततन्त्री और परिवादिनी शामिल हैं। सप्ततन्त्री और परिवादिनी सात तारों वाली थीं और इनके वादन में उन्नत तकनीक का प्रयोग होता था। रामायण, महाभारत, बौद्ध, जैन और पुराणों में वीणा और तन्त्री वाद्यों का उल्लेख मिलता है। ये धार्मिक, सामाजिक और सांगीतिक आयोजनों में बजाए जाते थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद संहिता (सायण भाष्य) स. सायण, संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
2. सायण, ऋग्वेद टीका, संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
3. ऋग्वेद, संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
4. पंचविश ब्राह्मण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, जयपुर
5. डॉ. धर्मावती श्रीवास्तव, प्राचीन भारत में संगीत, भास्कर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
6. डॉ. कुर्ट सेक, The History of Musical Instruments, Verlag for Musikgeschichte, जर्मनी, 1987
7. श्री ग. ह. तारलेकर, Music Instruments in Indian Sculpture, मुंबई: भारतीय सांस्कृतिक शोध संस्थान, 1990
8. तैत्तिरीय संहिता; वाजसेनीय संहिता; बोधायन श्रौत सूत्र; जेमिनीय ब्राह्मण, संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
9. ऐतरेय आरण्यक संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
10. शतपथ ब्राह्मण, संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
11. अथर्ववेद, संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
12. ताण्ड ब्राह्मण, संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
13. नाट्यायन श्रौत सूत्र, संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
14. स्वामी प्रज्ञानंद, A Historical Study of Indian Music, विद्यापीठ प्रकाशन, वाराणसी, 2005
15. पं. विद्याविलासी, वाद्य प्रकाश, संगीत मण्डल, मुंबई, 1998
16. श्री एस. एम. टैगोर, यंत्र कोश, ई. सन् 1875, कलकत्ता
17. डॉ. एस. परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पुणे विश्वविद्यालय, पुणे, 2000
18. महाभारत, आदि पर्व; अनुशासन पर्व; संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी।
19. अमरकोश, परिवादिनी एवं वीणा संबंधी शब्दार्थ, संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी
20. पं. गजपति नारायणदेव, संगीत नारायण, ओडिशी संगीत नाटक अकादमी, भुवनेश्वर
21. पं. जगदीश नारायण पाठक, सितार सिद्धांत, भारतीय संगीत परिषद्, दिल्ली
22. पं. एस. परांजपे, जातक साहित्य और वीणा वादन, पुणे विश्वविद्यालय, पुणे, 2000
23. डॉ. धर्मावती श्रीवास्तव, प्राचीन भारत में संगीत, भास्कर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000